धर्म और जीवन मूल्य

— डा. महेन्द्र भानावत

धर्म को लेकर कई परिभाषायें हो गई हैं। यह शब्द इतना सुविधावादी भी बना दिया गया है कि इसमें सभी सम्भावनाओं का समावेश हो जाता है। वैसे हमारा देश ही धर्मप्रधान है। जितने धार्मिक सम्प्रदाय यहाँ हैं उतने शायद ही कहीं देखने को मिलें। सभी सम्प्रदायों के धर्म के न्यारे-न्यारे रूप मिलेंगे। साधु सन्तों, मन्दिर-मठों तथा विभिन्न पंथ-पंथावलियों एवं समाजों में यह धर्म खूब पनपा, फैला और पसरा है।

गीता में श्रीकृष्ण जी कह गये—जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं जन्म धारण करता हूं। कोई तीन हजार बरस होने को आये, कृष्ण महाराज ने जन्म धारण नहीं किया। धर्म की हानि हो जब न! और मेरे पड़ोसी कई बरसों से कह-कहकर मेरा कान पका रहे हैं कि इस देश से जैसे धर्म ही गायब हो गया। जहाँ जाता हूँ वहीं धर्म की जुदा-जुदा बातें सुनने को मिलती हैं। जनधर्म तो वही प्रबल है जिसमें अधिकाधिक जीवन-मूल्य हों।

एक सज्जन ने तो मुझे आताल-पाताल का नक्शा ही खींच दिया और कहा—धर्म की जड़ पाताल में। मैंने उनसे कहा कि जड़ महत्त्वपूर्ण है या ऊपरी डाल पत्ते? पाताल की जड़ देखने से क्या होगा? उसे आपने जीवन से सींचो तब काम चलेगा। ब्याह-शादी में विदाई जब लड़की को दी जाती है तब औरतें लड़की को सीख देती हुई गाती हैं—धर्म तुम्हारा ए नार, पति की सेवा करना। इस गीत में पति को नहलाने, खिलाने-पिलाने तथा पोढ़ाने आदि का बड़ा सुन्दर चित्रण है। आज तो यह सब फिफ्टी-फिफ्टी हो गया है। जब से देश आजाद हुआ है, पत्नियाँ भी उसी तरह आजाद हो गई हैं, वे भी अब उसी तरह से नहाना-धोना, खाना-पीना, सोना-बिछौना मांगती हैं। यह भी एक धर्म है। सर्व धर्म सम्मेलन होने लग गये हैं अब तो। राजा हरिश्चन्द्र सत्य धर्म दे गये। सत्य के खातिर वे बिक गये और नारियाँ सत के कारण सती बन बैठीं। अकेले चित्तौड़ में ऐसे सत्रह जौहर हो गये। सती औरतों को अपने आप सत चढ़ता। वे अपने सत के प्रताप से, मंत्र-बल से आग उपातीं और सती हो जातीं। ये महासतियाँ कहलातीं। वे सतियाँ तो कई हुईं जो चिता को चढ़ गईं। तब यही उनका धर्म था। महावीर भगवान ने अहिंसा धर्म दिया और कहा—अहिंसा परमोधर्मः। अहिंसा की बड़ी सूक्ष्म परिभाषा दी। ऐसी परिभाषा अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी, हिंसा न मन से, न वचन से और न काया से स्वयं करना ही, अपितु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यों से करवाना भी नहीं और न किसी द्वारा हिंसा करते हुए का अनुमोदन ही करना। पर हिंसा-अहिंसा की सुविधावादी लोगों ने अपने ढंग से अपने मन भाती परिभाषायें बनाली हैं। इसके लिए उनका तर्क है कि जमाने के अनुसार यह सब करना पड़ता है, इसलिए धर्म की कसौटी भी बदलती नजर आ रही है।

यह सब हुआ इसीलिए धर्म शब्द के कई रूप बदलाव आये। देखिये धर्म शब्द किन-किन अच्छे-बुरे शब्दों की खोल के साथ जा लगा— धर्म धक्के, धर्म ध्वजा, धर्म चक्र, धर्म ध्यान, धर्म संघ, धर्मान्धि, धर्म कर्म आदि-आदि।

पर सर्वश्रेष्ठ धर्म दूसरों की भलाई का कहा गया है। यही सर्वमान्य और शाश्वत धर्म है। इसमें कोई जात-पांत आड़े नहीं आती। कोई वर्ग सम्प्रदाय का झमेला भी नहीं। सचमुच में यही सरस धर्म है। इसमें व्यक्ति जहाँ अन्य को सरसता देता है वहाँ स्वयं भी सरस बनता है। प्रकृति तो परमार्थ के लिए ही है। पहाड़, वृक्ष, नदी-नाले सबके सब परहित के लिए हैं। वृक्ष छाया देते हैं, फल फूल देते हैं, कइयों के आजीविका के स्रोत हैं, कइयों का इन्हीं से जीवन बसर होता है। बदले में क्या लेते हैं ये ? कई वृक्ष से बड़े पवित्र माने गये हैं जिनके बिना हमारा काम नहीं चलता। देवी-देवताओं के निवास स्थान होते हैं वृक्ष। बुद्ध को बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ, वे ईश्वर बन गये।

यही स्थिति नदियों की है। वे पानी देती हैं और भी बहुत कुछ देती हैं। बड़े-बड़े बांध बन गये हैं तो उनसे बिजली पैदा होती है। बिजली का उपयोग बताने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार पहाड़ों की, घाटियों की स्थिति है, सारी प्रकृति परोपकारी है, परमार्थी है, जो प्रकृति का परम धर्म है वही पुरुष का धर्म है।

जगत में जो-जो लोग परहित धर्म में लगे हुए हैं वे बड़े सुखी, शांत मन मिजाज वाले और संतोषी हैं। कोई विकलांगों की सेवा के लिए समर्पित है तो कोई गौ सेवा में अपना जीवन खपा रहा है। कोई प्रतिदिन चींटियों के बिलों के पास जाकर उन्हें खाना दे रहा है तो कोई बीमारों की देखभाल के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। ऐसे जितने भी लोग हैं उन्होंने अपने स्वहित को कभी प्राथमिकता नहीं दी इसीलिए उनका कुटुम्ब बहुत विस्तार लिए है। हमारे यहाँ तो यह उदारता रही है कि हमने सारी वसुधा को अपना कुटुम्ब-परिवार मानते हुए— वसुधैव कुटुम्बकम् का जयघोष दिया है।

जैनियों का तो यह मत ही उनके जीवन धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग और आचरण बन गया है। वे प्रतिवर्ष भाद्र माह में, पर्यूषण पर्व मनाते हैं त्याग तपस्या का और आखरी दिन क्षमायाचना के रूप में क्षमापर्व मनाते हुए समस्त सृष्टि के चौरासी लाख जीव योनि से क्षमायाचना करते हैं— जान-अनजान में, प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से किसी से भी मन से वचन से किंवा काया से कोई अपराध हुआ हो उसके लिए वे क्षमा की याचना करते हैं और आत्म-शुद्धि करते हैं। आत्म-शुद्धि का यह धर्म कितना उच्च परहित सरस धर्म हैं। वे कहते हैं—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वैर मज्जं न केणई।

मैं सब जीवों से क्षमा चाहता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, मेरी सब जीवों से मैत्री है, किसी से मेरा वैरभाव नहीं है, यही सच्चा परमार्थ धर्म है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युग कैसा ही हो, उसमें कैसे ही बदलाव आते रहें पर हमारे जो शाश्वत जीवन मूल्य हैं उनमें कभी कोई बदलाव नहीं आने का है। इन मूल्यों में सर्वोपरि मूल्य परहित धर्म का है। यही जीवन-धर्म, समाज-धर्म और देश-राष्ट्रधर्म है जिसकी अनिवार्यता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

धर्म में हमने प्रकृति और पुरुष का, जलचर नभचर और थलचर किसी प्राणी का कोई भेद नहीं किया है। लोककथाएँ, सारी धर्मकथाएँ, व्रतकथाएँ इस जीवन-धर्म से ओत-प्रोत हैं। हर कथा के अच्छे-बुरे पक्ष हैं पर अंत में सभी देवी-देवताओं से यही कामना की जाती है कि जैसा अच्छी करणी का अच्छा फल हुआ वैसा ही फल हमें भी मिले और कभी भी हम बुरी करनी की ओर प्रवृत्त न हों।

आज का युग अर्थप्रधान है। अर्थ के बिना जैसे सब कुछ अनर्थ है। अर्थ की यह होड़ा-होड़ी विश्वव्यापी है। सारी की सारी भौतिक समृद्धि– सुविधा इसी अर्थ की मूल भित्ति पर टिकी हुई है। धर्म ने इस अर्थकारी पहलू के साथ भी अपना समन्वय दिया है। एक कहानी है—'धर्म करने से धन बढ़ता है' इस कहानी में एक परिवार के सदस्यों का धर्म-अधर्म पक्ष उद्घाटित हुआ है जिसके सुफल-कुफल देखिये। कहानी है—

सेठ-सेठानी। भरा-पूरा घर। सात पुत्र और उनकी वधुएँ। सेठ सेठानी बड़े धर्मात्मा। प्रतिदिन पीपल पूजते, व्रत करते, कहानी कहते और आंवला भर सोना दान करके ही अन्न-जल मुँह में लेते।

सबसे छोटे लड़के की बहू पड़ोसिन के वहां आग लेने गई तब पड़ोसिन ने उसके कान भरे कि तुम्हारे सास ससुर प्रतिदिन सोना दान करते हैं। ऐसे करते-करते तो सारा घर खाली हो जायेगा, बूंद-बूंद करते तो समुद्र भी खाली हो जाता है फिर तुम्हारे पास क्या रहेगा ? बहू बोली—मैं क्या करूँ, यह बात तो उनके पुत्र अर्थात् मेरे पति को सोचने की है। पड़ोसिन बोली—यदि पति नहीं सोचे तो फिर पत्नी तो सोचे। बहू ने कहा—कल ही देखना।

दूसरे दिन सेठ-सेठानी नहा धोकर तैयार हुए। इतने में उनकी नजर ओवरे पर पड़ी जिसके एक बड़ा सा ताला लगा हुआ था। पूछा-ताछी हुई। छः बहुओं ने तो मना कर दिया तब सातवीं ने कहा—ताला मैंने लगाया है, आप तो सारा धन-माल लुटाने बैठे हैं, पीछे से हमारा क्या होगा ? सेठजी बोले—बेटी ! धरम करने से तो धन बढ़ता है।

सेठ-सेठानी ने सोचा कि अपने धर्म करने से बहू नाराज होती है अतः इस घर को ही छोड़ देना चाहिये। यह सोच, दोनों निकल गये। तेज गर्मी, जंगल में आंवला के नीचे सो गये। सेठजी को नींद आ गई। इतने में आंधी चली। आंवले गिरे कि गिरते ही सोने के हो जाते। सेठानी ने सेठजी को जगाया और कहा कि धरमराज तो यहां भी तूठमान हुए हैं। छोटकी बहू में अक्कल नहीं थी सो ओवरे के ताला लगा दिया। आंवलों से उन्होंने अपना कोथला भरा और आगे चले।

चलते-चलते एक गांव आया जहां एक मकान किराये पर लिया। स्नान ध्यान किया, व्रत कथा कही और एक ब्राह्मण को बुलाया—आंवला भर सोना दान किया और फिर अन्न-जल लिया। उधर सेठ सेठानी के सभी पुत्र कंगाल हो गये। न खाने को अन्न रहा, न पहनने को वस्त्र।

सेठ-सेठानी ने तालाब बनवाने की सोची। गांव-गांव एलान कराया, सभी पुत्र और उनकी बहुएँ वहां मजदूरी करने आईं। सेठ-सेठानी को इस बात का पता चल गया कि उनके पुत्रों की स्थिति कण-कण की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गई है। उन्होंने अपने यहां एक टोकर बांधी की धर्मराज के प्रताप से अन्य मजदूर आयें तब तो वह नहीं बजे और उनके घर के पुत्र और बहुएँ आयें तो बजे। यही हुआ पर वे सेठ-सेठानी को नहीं जान सके।

तालाब बन गया तब सेठ-सेठानी ने उत्सव किया। पांच पकवान बनाये। पढ़े-लिखे ब्राह्मण बुलाये। इसमें सबसे बड़े पुत्र को मुनीमी का काम दिया। दूसरों को सामान उठाने और देखभाल करने का। सबसे छोटी बहू को जीमने के बाद सफाई का काम दिया। सब लोग जीम-चूंट कर घर गये तब मजदूरों के जीमने की बारी आई। सबसे छोटी बहू मजदूरिन को उल्टी बाज परोसी और पांच पकवान की जगह नमक की डली, खोटा तांबा का टक्का और नीम का पत्ता रखा, यह देख अन्य मजदूरनी महिलाएँ उठ खड़ी हुईं कि हमारी पंगत में यह पराई जात की कौन आ गई ?

सेठ-सेठानी ने सबके हाथ जोड़े और कहा–सब प्रेम से जीमो। यह कोई पराई जात की नहीं है। हमारी सबसे छोटी बहू है जो पड़ोसिन के कहने में आ गई और ओवरे के ताला लगा दिया तथा हमें धरम-पुण्य नहीं करने दिया तो हम दोनों घर से ही निकल गये। यह नीम जैसी कड़वी, नमक जैसी खारी और खोटे पैसे जैसी खोटी है।

यह सुनते ही छोटी बहू जोर-जोर से रोने लग गई। अपनी गलती का एहसास कर वह सबके सामने अपने सास-ससुर के पांव पड़ी। उसके देखादेख अन्य बहुएँ और उनके पति भी उनके पांव पड़े और सब हिल-मिलकर रहने लगे।

यह सब परहित धर्म का पुण्य-प्रताप था। धर्मराज ने बता दिया कि जो स्वयं तो धर्म-कर्म करते नहीं पर जो करते हैं उनके आड़े आते हैं, उनकी क्या गति-मति होती है।

अपना हितधर्म तो सभी सोचते-करते हैं पर बलिहारी तो उनकी है जो परहित में अपना धर्म मानते हैं और उसी में जीवन को सरस सार्थक करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org